International Journal of Applied Research 2015; 1(8): 55-58

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(8): 55-58
www.allresearchjournal.com
Received: 05-05-2015
Accepted: 20-06-2015

डॉ0 स्नेह लता
असिस्टेंट प्रोफेसर (एडहॉक),
मैत्रेयी, बी–22, त्यागी विहार,
नांगलोई, दिल्ली–110041.

Correspondence:
डॉ0 स्नेह लता
असिस्टेंट प्रोफेसर (एडहॉक),
मैत्रेयी, बी–22, त्यागी विहार,
नांगलोई, दिल्ली–110041.

वैशाली की नगरवधू – उद्देश्य

डॉ0 स्नेह लता

'उपन्यास शब्द का कोशगत अर्थ है, कल्पित और लम्बी कहानी जो अनेक पात्रों एवं घटनाओं से युक्त हो। 'उपन्यास' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, उप+न्यास। उप का अर्थ है – 'समीप' और न्यास का अर्थ है – 'रखना'। इस तरह 'उपन्यास' का शब्दगत अर्थ है 'समीप रखना' अर्थात वह वस्तु या कृति (रचना) जिसको पढ़कर लगे कि वह हमारी ही है, इसमें हमारे जीवन का प्रतिबिम्ब है। रॉल्फ फॉक्स तो उपन्यास को आधुनिक जीवन का महाकाव्य मानते हैं। "उपन्यास का विषय है, व्यक्ति। वह समाज के विरुद्ध, प्रकृति के विरुद्ध, व्यक्ति के संघर्ष का महाकाव्य है। और यह केवल उसी समाज में विकसित हो सकता था जिसमें व्यक्ति और समाज के बीच सन्तुलन नष्ट हो चुका हो और जिसमें मानव का अपने सहजीवी साथियों अथवा प्रकृति से युद्ध ठना हो।"[1]

इस प्रकार उपन्यास आधुनिक गद्य की एक ऐसी विधा है जो मानव जीवन की कथा को कहती है। यह मनुष्य जीवन के अनुभवों का निचोड़ है, उसी के शब्दों में।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री प्रेमचन्द युगीन उपन्यासकारों में एक प्रतिभा सम्पन्न उपन्यासकार थे। उन्होंने इतिहास, पुराण से कथानकों का चयन करने के साथ–साथ काल्पनिक पात्रों के द्वारा सामाजिक समस्याओं का उद्घाटन करने वाले उपन्यास भी लिखे। 'वैशाली कर नगरवधू', वयं रक्षाम, सोमनाथ, आलमगीर, सोना और खून, रक्त की प्यास, आत्मदाह, अमर अभिलाषा, मन्दिर की नर्तकी, नरमेध, अपराजिता आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास है। आचार्य जी ने उपन्यासों के अलावा अनेक कहानियों एवं नाटकों की रचना की। उन्होंने छोटी–बड़ी लगभग 84 पुस्तकें विविध विषयों पर लिखीं। हिन्दी साहित्य में उनका प्रदेय बहुत महत्त्वपूर्ण है।

'वैशाली की नगरवधू' आचार्य चतुरसेन कृत बौद्धकालीन ऐतिहासिक उपन्यास है। यह आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व के समाज एवं राजनीति का जीता–जागता चित्र है। इसका रचनाकाल 1939 से 1947 है। यह उपन्यास शास्त्री जी के दस वर्षों के जैन, बौद्ध, आर्य एवं हिन्दू साहित्य के गहन सांस्कृतिक अध्ययन का प्रतिफल है। "भारतीय संस्कृति के उस युग के जीवन के टिमटिमाते अंश पर लेखक की दृष्टि गई है जिसमें वर्णाश्रम धर्म के ह्रास, बौद्ध तथा जैन धर्मों के अभ्युदय, गणातन्त्रात्मक राजनीति व्यवस्था के उज्ज्वल एवं विकृत पक्षों का प्रकृत स्वरूप उपलब्ध होता है।"[2]

उपन्यास की भूमिका में स्वयं लेखक का मन्तव्य है – "यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परन्तु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गम्भीर रहस्यपूर्ण संकेत है, जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति की विजय सहस्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे संभवतः किसी इतिहासकार ने आँख उघाड़कर देखा नहीं है।"[3]

इस प्रकार उपन्यासकार ने आर्यों की संस्कृति में पर्दे के पीछे छिपी हुई विकृतियों को उजागर किया है। जो आर्य संसार में अपने को सर्वश्रेष्ठ और उच्चकोटि का घोषित करते थे उनकी विचारधारा और मानसिकता कितनी निकृष्ट है यही दिखाना लेखक का उद्देश्य है। उस समय में धर्म और संस्कृति के नाम पर होने वाले अन्याय और अत्याचार का पर्दाफाश किया है। असत्य एवं असभ्यता को उजागर किया है। भूमिका में लेखक का विचार है – "मैं केवल आपसे एक यह अनुरोध करता हूँ कि इस रचना को पढ़ते समय उपन्यास के कथानक से पृथक किसी निगूढ़ तत्त्व को ढूंढ निकालने में आप सजग रहें।"[4]

'वैशाली की नगरवधू' की कथावस्तु का आधार बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित वैशाली की गणिका अम्बपाली है। इस गणिका से संबंधित उपाख्यान 'महावग्ग' के अध्ययन से लेखक को इस तथ्य का ज्ञान हुआ था कि अम्बपाली ने बुद्ध को भोजन का निमन्त्रण दिया था जिस पर वैशाली के राजपुरुष ईर्ष्या से जल उठे थे। इसके अतिरिक्त लेखक को यह भी ज्ञात हुआ कि वैशाली गणतन्त्र में एक कठोर नियमानुसार राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी कन्या को वेश्या का जीवन ग्रहण करना पड़ा था। स्पष्ट है कि लेखक ने इन दो ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर 'अम्बपाली' के जीवन की

कथा को विस्तार दिया है और इस विशालकाय उपन्यास की रचना की है।

इस उपन्यास में वैशाली नगरी के समाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिवेश को आधार बनाया गया है। वैशाली लिच्छवि के वज्जि संघ की राजधानी थी। "वज्जि संघ के अन्तर्गत उत्तरी बिहार के कुछ जिले थे यह आठ राज्यों का संघ था। इस संघ–राज्य की राजधानी वैशाली थी। पाणिनी और कौटिल्य दोनों ने इस राज्य को वज्जि कहा है। कालान्तर में मगध के राजा अजातशत्रु ने इस वज्जि राज्य के भाग को अपने राज्य में मिला लिया।"[5]

यह लिच्छवियों के वज्जी संघ की राजधानी थी। विदेह राज्य टूटकर यह वज्जी संघ बना था। इस संघ में विदेह, लिच्छवी, क्षात्रिक, वज्जी, उग्र, भोज, इक्ष्वाकु और कौरव ये आठ कुल सम्मिलित थे, जो अष्टकुल कहलाते थे। इनमें प्रथम चार प्रधान थे। वैशाली पूरे संघ की राजधानी थी।

अम्बपाली के जीवन की कथा इसी वैशाली नगरी में प्रारम्भ होती है। आम्र वृक्ष के नीचे प्राप्त हुई इस सुन्दरी कन्या का नाम महानामन और उसकी पत्नी ने अम्बपाली रखा। पत्नी की मृत्यु हो जाने पर महानामन उसे अपने गाँव ले गए और उसका पालन–पोषण करने लगे। चम्पक–पुष्प की कली के समान सुन्दर बालिका जब ग्यारह वर्ष की हो गई तो पिता से कुछ–कुछ माँगने लगी। युवा होती पुत्री की बढ़ती हुई इच्छाओं के कारण महानामन दोबारा वैशाली लौट आए और पुरानी नौकरी करने लगे। एक पिता होने के नाते वे अपनी पुत्री की इच्छाएँ और सपने पूरे करना चाहते थे, लेकिन ये न जानते थे कि ये सपने ही उसके लिए अभिशाप बन जाएंगे।

शास्त्री जी ने उपन्यास आरंभ में ही अम्बपाली के माध्यम से उस समय के समाज में नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है। वैशाली में प्रचलित दास प्रथा का उन्होंने आरंभ में ही जिक्र किया है। उनकी एक पंक्ति से ही उस समय में समाज में नारी की हीन दशा का आभास हो जाता है। जब महानामन दोबारा वैशाली लौट कर आता है तो उसका सामना दो युवकों से होता है। अम्बपाली के सौन्दर्य को देखकर एक युवक व्यंग्य करता है – "बेटी है? कहीं से उड़ा तो नहीं लाए हो? यहाँ वैशाली में ऐसी सुन्दर लड़कियों के खूब दाम उठते हैं। कहो बेचोगे?"[6]

इस सन्दर्भ से पता चलता है कि आर्यों की उस प्रसिद्ध नगरी में नारी दासों के समान बेची व खरीदी जाती थी। महानामन का वैशाली से चले जाने का एक कारण अम्बपाली का सौन्दर्य भी था। उसे भय था कि कहीं उसकी पुत्री किसी बुरी नीति का शिकार न हो जाए। क्योंकि नारी वहाँ केवल मनोरंजन की वस्तु मात्र थी। इस वैशाली में अम्बपाली अपने सपने पूरे करने आई थी। अम्बपाली अनिंध सुंदरी थी, उसके समान सुंदर पूरे वैशाली में कोई दूसरी युवती न थी। जब अम्बपाली 18 वर्ष की हुई तो उसके जीवन की कठिन परीक्षा आरंभ हुई। एक तरफ तो दिखाया गया है कि वज्जी संघ में अट्ठारह वर्ष के पश्चात युवती स्वाधीन होती है। स्वयं महानामन कहते हैं :–

"भन्तेगण, आज अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वज्जी संघ के कानून के अनुसार अब वह स्वाधीन है और अपने प्रत्येक स्वार्थ के लिए उत्तरदायी है। अतः आज से मैं उसका अभिभावक नहीं हूँ। वह स्वयं ही परिषद् को अपना मन्तव्य देगी।"[7]

किन्तु दूसरी ओर उसे अपनी इच्छा अनुसार अपना वर चुनने की स्वतंत्रता नहीं है, क्योंकि वह सुन्दर है। अम्बपाली सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। वैशाली के एक कानून के अनुसार नगर की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी को विवाह करने का अधिकार नहीं है। वह नगरवधू कहलाती है और उसे 'जनपदकल्याणी' का पद दिया जाता है। संघ के गणपति सुनन्द अम्बपाली के पिता महानामन से कहते हैं – "भन्ते महानामन, आज आपकी पुत्री अम्बपाली अठारह वर्ष की आयु पूरी कर चुकी। वैशाली जनपद ने उसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी निर्णीत किया है। इसलिए वज्जि गणतन्त्र के कानून के अनुसार उसे यह परिषद 'वैशाली की नगरवधू' घोषित किया चाहती है और आज इसे 'वैशाली की जनपद–कल्याणी' का पद देना चाहती है।"[8]

इस प्रकार लेखक ने वज्जि संघ के उस कानून की बखिया उधेड़ी है जो एक ओर तो नारी स्वाधीनता की बात करता है और दूसरी ओर उसे जनपदकल्याणी के नाम पर सार्वजनिक स्त्री का जीवन व्यतीत करने को विवश किया जाता है। उसकी अपनी अभिलाषाएँ कोई महत्त्व नहीं रखतीं, क्योंकि वह सुन्दर है। उसका अप्रतिम सौन्दर्य केवल नगर के मनोरंजन के लिए है। उसके सपने, उसकी इच्छाओं का वहाँ कोई मूल्य नहीं। वह नारी सुलभ अपनी कोई भी इच्छा पूरी नहीं कर सकती। न प्रेम कर सकती है, न विवाह। उसका सौन्दर्य, उसके आभूषण उसके लिए बेड़ियाँ बन गए। क्या यह नियम स्वीकार्य हो सकता है। इसलिए अम्बपाली उस कानून को 'धिक्कृत कानून' कहती है। "अम्बपाली के होंठ हिले। जैसे गुलाब की पंखुड़ियों को प्रातः समीर ने आंदोलित किया हो। वीणा की झंकार के समान उसकी वाणी ने संथागार में सुधावर्षण किया – "भन्ते आपके आदेश पर मैंने विचार कर लिया है। मैं वज्जि संघ के धिक्कृत कानून को स्वीकार करती हूँ, यदि गणसन्निपात को मेरी शर्तें स्वीकार हों।"[9]

लेखक ने इसी काले पर्दे की ओर संकेत किया है। गणतन्त्र में किस प्रकार नारी स्वाधीनता का हनन किया जा रहा है, झूठे कानून के नाम पर एक युवती को गणिका बनने पर मजबूर किया जाता है। अम्बपाली इस धिक्कृत कानून को यशस्वी गणतन्त्र पर कलंक के समान मानती है। इस असभ्य कानून के कारण अम्बपाली की अथाह रूप राशि उसके लिए अपमान का कारण बन गई। जिस जीवन पर वह गर्व कर सकती थी, किसी की कुलवधू होकर स्त्रीत्व के अधिकारों को प्राप्त कर सकती थी, वही जीवन उसके लिए कलंक का पर्याय बन गया। वह अपनी पसन्द के व्यक्ति से प्रेम नहीं कर सकती, विवाह नहीं कर सकती बल्कि यह यौवन उसे वैशाली के हाट में बेचने को मजबूर किया जा रहा है। वह कहती है – "आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं, वह एक बार नहीं लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।"[10] अवश्य ही ऐसा कानून गणतन्त्र पर लांछना व कलंक के समान है। ऐसा नियम जो किसी स्त्री को उसके अधिकारों व स्वतंत्रता से वंचित करे निकृष्ट एवं निंदनीय है। लेकिन अम्बपाली 'नगरवधू' अपनी शर्तों के आधार पर बनना स्वीकार करती है।

लेखक का संकेत एक दूसरे पक्ष की ओर भी है। चतुरसेन शास्त्री जी ने वर्षों के अध्ययन से जाना कि उस समय राज सत्ता, सामन्त और नगरसेठ भोगविलास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। साम्राज्य लिप्सा और भोग लिप्सा यही उस समय के राजाओं का मुख्य कार्य था। माँस–मदिरा का सेवन व भोग विलास ही उनके जीवन के अपरिहार्य अंग थे। लिच्छवियों व आर्यों की गणतंत्र व्यवस्था पतन की ओर अग्रसर थी। सामान्य जनता की समस्याएँ एवं आवश्यकताओं की ओर किसी की दृष्टि न जाती थी। राजा, सामन्त और युवा नगर सेठ नित्य ही मदिरालय में ही अपनी ऊर्जा को होम कर रहे थे। दास प्रथा प्रचलित थी। स्त्री व पुरुष वस्तुओं की भाँति हाट–बाजार में खरीदे व बेचे जाते थे। दासों का जीवन निकृष्ट कोटि का था। उनके टूटे–फूटे झोंपड़े हैं, उच्छिष्ट आहार मिलता व पशुओं की भाँति उनसे कार्य लिया जाता था। उन्हें स्वतन्त्र जीवन जीने का कोई अधिकार नहीं था। ज्ञाति सिंह की पत्नी रोहिणी गान्धार की थी। वहाँ दास प्रथा नहीं थी, जब वह पति के साथ प्रथम बार वैशाली आती हैं तो दास प्रथा देखकर अत्यंत आश्चर्य प्रकट करते हुए कहती है :– "कैसे आप मनुष्यों को भेड़–बकरियों की भाँति खरीदते–बेचते हैं? और कैसे उन पर अबाध शासन करते हैं?"[11] इस पर अम्बपाली उत्तर देते हुए कहती है – "अब तुम गान्धार के स्वतन्त्र वातावरण का सुखस्वप्न भूल जाओ। वज्जि संघ को आत्मसात करो, जहाँ युवराज स्वर्णसेन जैसे लिच्छवि तरुण और आर्य आश्वलायन जैसे श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते हैं, जिन्हें बड़े बने रहना ही होगा। इन्हें दास चाहिए, दासी चाहिए और भोग चाहिए।"[12] लेखक ने अम्बपाली के मुख से

राजाओं के भोग विलास पूर्ण जीवन पर टिप्पणी की है।

आर्यों की सामाजिक व्यवस्था का केन्द्र राजा होता था। इन्हीं आर्य राजाओं की वर्ण संकर सन्तानों की ओर भी लेखक की दृष्टि गई है। राजा तथा ब्राह्मण छलबल से, रुचि के अनुसार सभी प्रकार की स्त्रियों को दासी रूप में ग्रहण कर वर्ण–संकर सन्तान को जन्म देते हैं। इन वर्ण–संकर सन्तानों को अधिकारों से वंचित कर दिया जाता था। ये ही सन्तान आगे चलकर आर्यों के विनाश का कारण बनी। कोसल नरेश प्रसेनजीत का दासी पुत्र विदूड़भ भी आर्य राजाओं की नीतियों से घृणा करता है। वह कहता है – "हम सब दासी पुत्र, वर्णसंकर बन्धु, जो आप कुलीन किन्तु कदाचारी आर्यों से घृणा करते हैं, उसे सार्वजनिक बनाएंगे। हम आर्यों के समस्त अधिकार, समस्त राज्य, समस्त सत्ताएँ छीन लेंगे।"[13] इस प्रकार लेखक की दृष्टि आर्य राजाओं के विनाश के कारणों पर भी गई है।

उस समय समाज में राजा, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के तीन वर्ग ही महत्त्वपूर्ण थे। राजा दासों का स्वामी और प्रजा के सर्वस्व का स्वामी है। वह उनकी युवती पुत्रियों को अपनी विलास–कामना के लिए अन्तःपुर में जितनी चाहे भर सकता है, उनके तरुण पुत्रों को अपने अकारण युद्ध में मरवा सकता है। वह प्रजा की पसीने की कमाई को बड़े–बड़े महल बनवाने और उन्हें भाँति–भाँति के सुख–स्वप्नों से भरपूर करने में खर्च कर सकता है, उसकी आज्ञा सर्वोपरि है। ब्राह्मण राजा के अनैतिक कार्यों को सहयोग देकर उनसे मनचाहा पुरस्कार प्राप्त करने में ही मग्न रहते थे। धर्म केवल उच्च वर्ग का ही पोषक रह गया था। निम्न जाति के लिए वहाँ कोई स्थान न था। लेखक ने जीवक कौमारभृत्य और राजकुमार विदूड़भ की बातचीत द्वारा समाज की इसी अवस्था की ओर संकेत किया है। "और जब तक मोटे बछड़ों का माँस खाने वाले, सुन्दरी दासियों को दक्षिणा में लेने वाले ब्राह्मण रहेंगे, और रहेंगे उन्हें अभयदान देने वाले ये राजा लोग, तब तक ऐसा ही रहेगा मित्र। ये तो स्वर्ण, दासी और माँस के लिए कोई भी ऐसा काम, जिससे इनके आश्रयदाता राजा और सामन्त प्रसन्न हों, खुशी से करने को तैयार हैं।"[14]

इस प्रकार ब्राह्मण जिसका कार्य समाज को सही दिशा देना व राजाओं का उचित मार्गदर्शन करना है, जब वे ही मार्ग से भटके हुए हैं तो ब्राह्मण धर्म कैसे समृद्ध हो सकता है। "ब्राह्मण धर्म से भीतर ही भीतर द्वेष भावना देश में बहुत फैल गई थी, क्योंकि उसमें निम्न श्रेणी के उपजीवियों के विकास का कोई अवसर ही न था। वह राजाओं ब्राह्मणों और सेट्ठियों का धर्म था वे ही उससे लाभान्वित होते थे।"[15]

उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री ने कोसल की राजधानी श्रावस्ती नगरी का चित्रण करते हुए बताया है कि समाज में तीन वर्ग ही उच्च स्थान के अधिकारी थे। ब्राह्मणों के कार्यों का लेखा–जोखा प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं – "ब्राह्मण इन सामन्तों और राजाओं को परमेश्वर घोषित करते, इन्हें ईश्वरावतार प्रमाणित करते और इनके सब ऐश्वर्यों को पूर्वजन्म के सुकृतों का फल बताते थे। इसके बदले में वे बड़ी–बड़ी दक्षिणाएँ फटकारते और स्वर्णभूषिता सुन्दरी दासियाँ दान में पाते थे।"[16]

बौद्ध एवं जैन धर्मों के उदय के कारण लेखक ने इसी व्यवस्था में खोजे हैं। लेखक का विचार है कि उस समय में ब्राह्मण धर्म राजतंत्र का पोषक था। समाज में उच्च वर्ग का ही प्रभाव था। सर्व साधारण को सभी प्रकार के अधिकारों से दूर रखा जाता था, धर्म के द्वार निम्न वर्ग के लिए बंद थे। भाग्यवाद के नाम पर सामान्य जनता को स्पर्धा से रोक रखा था। इसी कारण उस समय बौद्ध व जैन धर्म का अभ्युदय महत्त्वपूर्ण रहा। गौतम बुद्ध स्वयं राजकुमार थे, लेकिन उन्होंने बौद्ध धर्म के द्वार सभी के लिए खोल दिए। वहाँ राजा, प्रजा, ऊँच–नीच का कोई भेद–भाव नहीं था। उन्होंने ब्रह्मचर्य और अपरिगृह की शिक्षा दी थी। निम्न जाति के युवकों को उन्हांने संघों का प्रमुख बनाया था। उन्होंने जीवन में मध्यम मार्ग को अपनाने पर बल दिया। कौमार भृत्य राजकुमार विदूड़भ से कहता है – "सर्वजित–निग्रन्थ महावीर और शाक्य पुत्र गौतम ने आर्यों के धर्म का समूल नाश प्रारम्भ कर दिया है। उन्होंने नया धर्म–चक्र–प्रवर्तन किया है, जहाँ वेद नहीं है, वेद का कर्त्ता ईश्वर नहीं है, बड़ी–बड़ी दक्षिणा लेकर राजाओं के पापों का समर्थन करने वाले ब्राह्मण नहीं हैं। ब्रह्म और आत्मा का पाखण्ड नहीं है। उन्होंने जीवन का सत्य देखा है, वे इसी का लोक में प्रचार कर रहे हैं।"[17]

लोक कल्याण की चिन्तना में तथागत सदैव विचार मग्न ही रहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि संसार में अल्पमत, तीक्ष्ण बुद्धि, सुस्वभाव और सुबोध्य प्राणी हैं, जो संसारेत्तर विधानें से भयभीत रहते हैं, उन्हें प्रकाश देना है। उन्होंने सभी जातियों के स्त्री–पुरुषों के लिए मोक्ष के द्वार खोल दिए। "तथागत अपने संघ को समुद्र कहते हैं, जहाँ सभी नदियाँ अपने नाम रूप छोड़कर समुद्र हो जाती हैं।[18] संघ में राजा और चाण्डाल सभी समान हैं, उनमें कोई भेदभाव नहीं है। ब्राह्मण धर्म की वर्जनाओं के कारण ही समाज का प्रगतिशील शोषित वर्ग बौद्ध धर्म की ओर प्रेरित हुआ। इसी कारण बौद्ध व जैन धर्मों का उदय एवं विकास हुआ। समाज के शोषित वर्ग को वहाँ प्यार, सम्मान व आदर प्राप्त हुआ। नर्तकी अम्बपाली भी अंत में बौद्ध धर्म में दीक्षित हुई।

अम्बपाली के श्राप के कारण वैशाली नगरी का वैभव धीरे–धीरे नष्ट होने लगा। मगध सम्राट बिम्बसार के आक्रमण के कारण वैशाली के लाखों लोग युद्ध में मारे गए। अनेक अनैतिक संबंधों का खुलासा हुआ। अम्बपाली व सोमप्रभ बिम्बसार व आर्य वर्षकार के पुत्र और पुत्री थे। इन सब कारणों से अम्बपाली ने स्वयं को सप्त भूमि प्रासाद में बंद कर लिया था। विलासिता का वह वातावरण खत्म हो गया था। दस वर्ष तक अम्बपाली अपने महल से बाहर नहीं निकली। दस वर्ष पश्चात जब गौतम बुद्ध वैशाली पधारे तो अम्बपाली ने उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया। बुद्ध ने वह निमन्त्रण स्वीकार किया। वह महात्मा बुद्ध के चरणों में झुक गई और अपनी पीड़ा इन शब्दों में व्यक्त की – "भन्ते भगवन, इस अधम–अपवित्र नारी की विडंबना कैसे बखान की जाए! यह महानारी शरीर कलंकित करके मैं जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ संकल्प से मैं वंचित रही। भगवन्, यह समस्त संपदा मेरी कलुषित तपश्चर्या का संचय है। मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्य हृदय रहकर अब तक जीवित रही हूँ, यह मैं कैसे कहूँ?"[19]

इस प्रकार अम्बपाली को भगवान बुद्ध ने आशीर्वाद दिया और उसका उद्धार किया। अम्बपाली बौद्ध धर्म में भिक्षुणी बन गई। इस प्रकार उसने अपने कलुषित जीवन को पापमुक्त किया। अब तक बौद्ध धर्म में स्त्रियों का प्रवेश नहीं था, पर अम्बपाली के पश्चात बौद्ध धर्म के द्वार उनके लिए खुल गए। सोमप्रभ भी अंत में बौद्ध धर्म ग्रहण कर लेता है।

अतः स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने जिस उद्देश्य को लेकर इस विशालकाय उपन्यास की रचना की उसमें वे सफल रहे हैं। लेखक का उद्देश्य था, नारी जीवन की स्वाधीनता और नारी शक्ति का उपयोग समाज कल्याण के कार्यों हेतु हो। समाज में मानवीय एकता की स्थापना, समानता की भावना पैदा करना भी लेखक का उद्देश्य रहा है, क्योंकि उपन्यास की रचना के समय हमारा देश परतन्त्र था। युद्ध का विरोध व मानवता प्रेम दिखाना ही लेखक का ध्येय है। ब्राह्मण व आर्य जातियों का पतन तथा बौद्ध व जैन धर्मों के उदय के कारणों पर भी लेखक ने प्रकाश डाला है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. रैल्फ फॉक्स अनुवाद नरोत्तम उपन्यास और लोकजीवन, नागर प्रकाशन, पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि. नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1980, पृ. 33
2. डा. पुष्पा कोछड़ हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास, नचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण – 1987, पृ. 195

3. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 6
4. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 6
5. डा. माधुरी मिश्र प्रसाद साहित्य का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक विवेचन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1991
6. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 12
7. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 17
8. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 16
9. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 18
10. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 18
11. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 81–82
12. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 83
13. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 96
14. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 103
15. राजेश शर्मा हिन्दी साहित्य और बौद्ध धर्म, पृ. 12, स्वराज प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 1999
16. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 172
17. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 101
18. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 103
19. आचार्य चतुरसेन शास्त्री वैशाली की नगरवधू, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2013, पृ. 446